“आजादी के बाद उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन : एक ऐतिहासिक अध्ययन (1947-2011)”

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ से इतिहास विषय में
पी०एच०डी० की उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध-सारांश

शोध निर्देशिका
प्रो० शूरा दारापुरी
(आचार्या)
इतिहास विभाग

शोधार्थी
रंजीत कुमार
नामांकन संख्या: 969/17

इतिहास विभाग
अम्बेडकर अध्ययन विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ-226025(उ०प्र०)

2023

शोध–सारांश

देश या दुनिया के किसी समाज से जुड़े आन्दोलन का सूत्रपात सामान्यतः तब होता है जब उस समाज के जागरूक उत्कृष्ट एवं विवेकशील व्यक्ति उस आन्दोलन को गति देते हैं। प्रत्येक आन्दोलन के उदय की पृष्ठभूमि में विभिन्न प्रतिमान एवं आयाम होते हैं। जिसका सम्बन्ध सामाजिक शोषित पीड़ित एवं अस्तित्व विहिन वर्ग को प्रेरणा देना होता है। प्रत्येक आन्दोलन के निर्धारण में शोषित दलित एवं शक्तिहीन वर्ग के प्रति आशा आकांक्षा एवं उसके लक्ष्य को संगठित करना एवं उसमें नवीन क्षमता पैदा करने का उद्देश्य होता है। जिससे कि वंचित समाज मुख्यधारा से जुड़कर अपने जीवन को व्यवस्थित एवं संगठित बना सके।

शोषित एवं दलित वर्ग की समस्या जाति व्यवस्था की ही देन प्रतीत होती है। अतः दलित आन्दोलन की प्रकृति अथवा स्वरूप कुछ भी हो इसका उद्देश्य जाति विहिन नूतन समाज की स्थापना कर देश के संसाधनों में भागीदारी एवं सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधितत्व एवं समानता प्राप्त करना ही होता है। जिसमें वे सक्रिय एवं व्यावहारिक रूप से सदैव क्रियाशील बने रहें ताकि समता, न्याय तथा बन्धुत्व के साथ विभिन्न संवैधानिक संस्थाओं को गति मिल सके।[1]

भारतीय दलित आन्दोलन की प्रकृति एवं स्वरूप में सामाजिक एवं आर्थिक भागीदारी के साथ–साथ मानवीय गरिमा एवं सामाजिक न्याय प्राप्त करने का आन्दोलन भी हैं यह दलित आन्दोलन सामाजिक व्यवस्था में ढाँचागत परिवर्तन लाने के लिए किये जाने वाला सामूहिक प्रयास है।[2]

दलित विमर्श पर अपना अभिमत व्यक्त करते हुए मनीषी एवं महान चिन्तक बोधानन्द जी महास्थविर कहते हैं कि उच्च वर्ण के हिन्दू जातियों और इन्हीं के पद चिन्हों पर चलते हुए समृद्ध पिछड़ी जातियों ने समाज में गरीब एवं दलित जातियों

---

[1] पई, सुधा (2000), न्यू सोशल एण्ड पॉलिटिकल मूवमेंट ऑफ दलितः ए स्टडी ऑफ मेरठ डिस्ट्रीक्ट, उ0 प्र0, जर्नल न0 34, 189–220।

[2] कुमार, विवेक (2008), बी0 एस0 पी0 एवं संरचनात्मक परिवर्तन, द्वितीय संस्करण, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।

को मिले हुए आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक अधिकारों को समाप्त कर दिया है। उनको अपना दास बना दिया है और दुर्व्यवहार करके इन्हें निम्न से निम्न कार्य करने के लिए बाध्य कर दिया है। उन्हें अपने भाग्य पर कोसने के लिए मजबूर कर दिया, जिसके कारण दलित स्वंय यह सोचने पर विवश हो गया है कि सवर्ण समाज की सेवा करना ही उसका मूल धर्म बन गया है।

इस अध्ययन के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश (पूर्व में यूनाइटेड प्राँविंस) में होने वाले समग्र दलित आन्दोलन एवं उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जिसमें पूर्व औपनिवेशिक एवं उत्तर औपनिवेशिक काल को भी सम्मिलित करते हुए दलितों की मूल समस्या के जड़ों को समझने का भी प्रयास किया गया है। इस शोध का काल आजादी के पश्चात् 1947 से 2011 तक रखा गया है, जिसमें दलित आन्दोलन की पहचान उसका स्वरूप उसकी प्रविधि एवं उसके प्रभावों को सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया गया है।

भारतीय जातिप्रथा या धर्मशास्त्रों में वर्णित वर्ण–व्यवस्था भारतीय इतिहास की विशिष्टतम और विलक्षण संस्था है जिसके बल पर बौद्धिक और आध्यात्मिक जगत के अग्रणी नेता जो ब्राह्मण–पुरोहित वर्ग के थे, आर्य–अनार्यों के मध्य श्रेणीकरण श्रम विभाजन करके समाज को विघटित करने में सफल हुए। वर्ण या जाति–भेद के कारण ही अस्पृश्य और दलित जातियों का वर्ग बना। ये रोम के गुलामों (दास) से बदत्तर जीवन जीने वाले लोग थें।[3]

हजारों साल तक शूद्र–दलित खेतीहर, कर्मकार, कमेरे मजदूर या बंधुआ गुलाम बने रहे। घरेलू दस्तकारियों में लगे रहे। जंगल–पर्वतों, नदी तटों पर निवास करते रहे। घुमन्तु जीवन जीते रहे। अकाल, सूखा, बाढ़ महामारी, युद्धों से सर्वाधिक जनहानि उन्हीं की हुई। वे ऊँची संगठित जातियों के लिए काम करते रहे। उन्हें ईश्वर और धर्म के बहकावे में रखा गया। गाँव में बसने वाले अस्पृश्य–दलित घोर उपेक्षा और उत्पीड़न का शिकार बने। निस्संदेह ही वे ग्राम–नगरीय संस्कृति में

[3] चंचरीक, के0एल0, 'भारत के दलित आन्दोलन (एक मूल्यांकन),, पृ0 8–9।

राजन्य, पुरोहित और वैश्य वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण, सामाजिक दासता, ऊँच–नीच के व्यवहार का निशाना बने।[4]

इस प्रकार से जब पूरे भारत में दलितों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार किया जाने लगा और सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक लाभ से वंचित कर दिया गया तब दलित समाज में एक भयंकर आक्रोश की वेदना पैदा हुई। जिससे दलित समाज के लोग अपने अधिकार के लिए उच्च जाति या सर्वण समाज या फिर दुर्व्यव्यहार जैसी अव्यवस्था के खिलाफ भारत के कोने–कोने में लोग एकत्रित होने लगे और एक आंदोलन की शुरूआत के लिए लामबद्ध हो गए।[5]

भारतीय संस्कृति को विश्व में महान गौरव प्राप्त है और भारतीय समाज **"वसुधैव कुटुम्बकम"** और "सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामयाः" जैसे मानवीय तथा आदर्शवादी मूल्यों पर आधारित है। किन्तु सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक स्तर पर मंथन किया जाये तो भारतीय समाज अनेक वर्गो में विभाजित रहा है। इसी समाज का एक विशाल हिस्सा सदियों से अमानवीय यातनाओं, वर्णगत–जातिगत उच्चता एवं निम्नता के अत्याचारों एवं जातीय अहंकार के दंश से पीड़ित रहा है। धर्मशास्त्रों एवं सामाजिक, धार्मिक, मान्यताओं के आधार पर उक्त अमानवीय मूल्यों को धर्मसम्मत बताया जाता रहा है। दलित समाज को सदैव से ही आर्थिक सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़ा रखा गया। और आज भी भारत में किसी न किसी रूप में यह घृणित व्यवस्था विद्यमान है। जबकि संविधान में सभी नागरिकों को समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व के अधिकार प्रदान किये गये हैं। परन्तु वास्तविकता इसके परे है। दलितोत्थान एवं उनमें चेतना जाग्रत करने का कार्य समय–समय पर मनीषियों द्वारा किया जाता रहा है। परन्तु दलित समाज में आज भी जागरण एवं चेतना के विकास की आवश्यकता बनी हुई है।[6] ब्राहमणवादी धर्मग्रन्थों में शुद्रों एवं अस्पृश्यों के लिए जो व्यवस्था की गई थी, आज इक्कीसवी सदी में भी उसका प्रभाव दलित समाज पर बना हुआ है। अठारहवीं शताब्दी तक उनकी स्थिति में कोई परिवर्तन नही हुआ था परन्तु भारत के सामाजिक–वैचारिक

[4] वही, पृ0 10।

[5] संधु, जोगिंद्र, दलित चेतना के संदर्भ में : ओमप्रकाश वाल्मीकि, साहित्य प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ0–02।

[6] जी0 शाह (1885), 'कास्ट एण्ड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन इंडिया', परमानेंट ब्लैक पब्लिकेशन, दिल्ली।

इतिहास में 19वीं शताब्दी को नवजागरण का युग कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि मानवीय जगत में दलित आन्दोलन मनुष्य का ऐसा सामूहिक प्रयास है जो जान बुझकर व्यवस्था परिवर्तन की दृष्टि से किया जाता है और यही प्रयास दलित को अपने समाज के लिए भविष्य के उद्देश्य तथा वर्तमान के लक्ष्य को निर्धारित करता है। यही व्यवस्था अपने उद्देश्यों तथा लक्ष्यों की प्राप्ति की रणनीति निर्धारित करती है तथा उन्हें प्राप्त किये जाने का मूल्याकंन भी करती है। जिस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में स्वतन्त्रता का महत्व होता है उसी प्रकार सामूहिक जीवन में सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन (आन्दोलन) का होता है। व्यवस्था परिवर्तन सम्बन्धित आन्दोलन के अन्दर बहस और संवाद उसे जीवन्त बनाये रखते हैं। तथा समाज एवं सरकारों की जिम्मेदारी भी सुनिश्चित कराते हैं।[7]

यद्यपि उत्तर प्रदेश का दलित आन्दोलन 1990 के बाद एक ऐसे पड़ाव पर पहुँचा जहाँ दलित जातियों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो गयी। 1950 से 1990 तक दलित राजनीति कई दौर से गुजरी। दलितों को सरकारी नौकरियों, और राजनैतिक संस्थाओं में आरक्षण मिला। भूमि सुधारों एवं सरकारी कार्यक्रमों से दलित जातियाँ कुछ–कुछ लाभान्वित हुईं। दलित जातियों के आर्थिक उत्थान ने उन्हें राजनैतिक रूप से सशक्त बनाया। अध्ययन अवधि (1947 से 2011) में प्रदेश की राजनीति में दलितों की महत्वपूर्ण भूमिका थी सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, धार्मिक दृष्टि से जो जातियाँ पिछड़ गई हैं या जिन्हें अवसरों से वंचित रखा गया वे 'दलित जाति' कहलाती हैं।[8]

आजादी के पूर्व औपनिवेशिक काल में ही विभिन्न दलित जातियों के संगठन बनें, जिसके माध्यम से अपनी जातीय अस्मिता को एक नया पहचान देते हुए स्वजातियहित, में उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न जातीय संगम आकार लेने

[7] पालवास–कास्ट फेडरेशन एण्ड पार्टी इन उ0 प्र0 साउथ एशियन बुक पाब्लिकेशन 1987 आर0 अकेला, कांशीराम के साक्षात्कार, प्रकाशन वर्ष–2007, चतुर्थ संस्करण चतुर्थ, सम्यक प्रकाशन, मानक पाब्लिकेशन, लक्ष्मी नगर दिल्ली 111192

[8] माता प्रसाद, 1995, उत्तर प्रदेश के दालित जातियों का दस्तावेज, किताबघर, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण।

लगे जिसका उद्देश्य अन्ततः अस्पृश्यता की समाप्ति एवं मानवीय गरिमा की स्थापना करना ही था।[9]

जिसमें प्रमुख रूप से 1905 में अल्मोड़ा में टम्टा महासभा, चमार महासभा, 1917 मे जाटव महासभा, 1933 में धोबी महासभा, 1920 मे निषाद महासभा, 1910 में कोरी सुधार महासभा, 1915 पासी महासभा, 1933 में हरिजन सेवक संघ, 1912 में आगरा में आदिहिन्दू महासभा इत्यादि संगठन रहे जो आगे चलकर अपने जाति, पहचान को गौरवान्वित करते हुए संगठनों के अन्दर सुधार पर विशेष बल दिए।[10]

दलित वर्ग ऐसी जातियाँ हैं जिनके स्पर्श से कुछ रूढ़िवादी हिन्दू अपने को अपवित्र मानते हैं। हिन्दू समाज की परम्परागत स्थान के कारण इन्हें मंदिरों में प्रवेश की अनुमति नहीं थी, और उन्हें अलग कुँओं से पानी लेना पड़ता था। पाठशाला के भवन में नहीं अपितु उसके बाहर खड़े होकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। दलित शब्द आज प्रायः शूद्र, अतिशूद्र, चाण्डाल मेहत्तर आदिवासी एवं अद्भुत जातियों के लिए प्रयोग किया जाता है।[11]

उत्तर प्रदेश की दलित जातियों में पारम्परिक रूप से राजनीति मे भागीदारी और राजनैतिक जागरुकता काफी कम थी। किन्तु सामाजिक परिवर्तन हेतु आन्दोलन निरन्तर चलता रहा। औपनिवेशिक काल में उत्तर प्रदेश में दक्षिण भारत एवं पश्चिमी भारत की तरह उग्र ब्राहमण विरोधी आन्दोलन नहीं हुआ। आजादी के तुरन्त बाद दलित वर्ग के एक अभिजात वर्ग ने बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर एवं महात्मा बुद्ध तथा ज्योतिबा राव फूले के विचारों से प्रभावित होकर रिपब्लिकन पार्टी के नेतृत्व में थोड़े समय के लिए दलितों को प्रेरित किया। किन्तु यह कटु सत्य है कि दलित समुदाय के एक छोटे से अभिजात वर्ग को छोड़कर, आर्थिक सुधारों का लाभ आजादी के बाद अधिकांश दलितों तक नहीं पहुँचा। और 1980 के दशक के मध्य से जाति आधारित ध्रुवीकरण बहुजन समाज पार्टी के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ।

[9] जे० निसफील्ड (1885) ब्रीफ व्यू ऑफ दी कास्ट सिस्टम आफ नार्थ नोटरी प्रोविन्ट एण्ड अवध गवर्नमेट प्रेस इलाहावाद

[10] एम0 लिंच (1974) द पोलिटिक्स आफ अनटचेबलटीः सोसल मोविलिटी एण्ड सोसल चेंज इन इन्डिया, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

[11] जगजीवन राम, 2001 भारत में जातिवाद एवं हरिजन समस्या, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली संस्करण, पृ0–78–99,

इसकी स्थापना कांशीराम ने की, 1993 में पहली बार बसपा ने सरकार बनाई। 1995 और 1997 में एवं 2007 में बसपा ने अपनी सरकार की स्थापना करके उ० प्र० की राजनीति में व्यापक बदलाव कर कराए।[12]

साहित्य का पुनरावलोकन–

'मदर इण्डिया' अंग्रेजी में प्रकाशित यह पुस्तक हिन्दू भारत में खलबली मचा दी थी। कैथरिन मेयो मूलतः इतिहासकार थी, उन्होंने पूरे भारत की यात्रा की उन्हें सबसे अधिक दुःख भारत की अछूत जातियों एवं स्त्रियों की दशा देखकर हुआ था। इस पुस्तक के प्रकाशित होने से जहाँ ब्रिटिश क्षेत्रों में इसका स्वागत हुआ वहीं भारत में इसकी घोर निंदा हुई और इसे नस्लवाद तथा इन्डोफोबिया की दृष्टि से देखा गया। हिन्दुओं द्वारा की नई आलोचना का सबसे बड़ा कारण था कि मिस मेयो ने हिन्दू धर्म एवं संस्कृति पर हमला किया था, पर दुर्भाग्य से उस काल खण्ड में वही भारत का सच भी था। इससे समझा जा सकता है कि मिस मेयो की 'मदर इंडिया' में भारत के हिन्दू जगत को किस कदर विचलित कर दिया था।[13]

जयश्री गोखले, फ्राम कन्शेसन टू कनफ्रन्टेशन, 1993 में लिखती है कि – आर.पी.आई. भले ही राजनैतिक तौर पर बहुत बड़ी सफलता अर्जित नहीं कर पायी थी पर इन दलों ने ऐसी परम्परा की नींव डाली जिसने दलितों को लामबन्द करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, उनका मानना था कि राजनैतिक चेतना से ही दलित हुक्मरान बन सकता है। इस पाठ को बाबा साहब अम्बेडकर ने अपने अनुयायियों में फैलाया, राजनीतिक चेतना से ही राजनैतिक शक्ति आती है और राजनैतिक शक्ति से ही दलित अपनी समस्त कठिनाइयों को दूर कर सकते हैं।[14]

गेल ओमवेट की पुस्तक – "दलित और लोकतान्त्रिक क्रान्ति" डा0 अम्बेडकर और औपनिवेशिक भारत में दलित आन्दोलन" ऋषि प्रकाशन (1994) द्वारा प्रकाशित एक मूल्यवान कृति है जो दलित आन्दोलन की उत्पत्ति और विकास से सम्बन्धित

[12] इण्डिया टूडे : ब्रेकिंग द बैरियर–30 अप्रैल 1997
[13] केथरिन मेयो, मदर इण्डिया, हिन्दी अनुवाद ऊषा नेहरू 1928, हिन्दूस्तानी प्रेस प्रयाग, इलाहाबाद, उ0 प्र0।
[14] ऊषा नेहरू (1928)हिन्दूस्तानी प्रेस, प्रयाग, इलाहाबाद, उ0 प्र0।

है। इस पुस्तक में लेखिका ने न केवल देश के विभिन्न स्थानों पर होने वाले दलित आन्दोलन का वर्णन किया है, बल्कि ऐतिहासिक सामग्री की प्रस्तुतीकरण भी किया है। लेखिका ने इसका विश्लेषण भी किया है कि भारत में जाति की उत्पत्ति एवं विकास किस प्रकार हुआ। वह भारत मे दलित विद्रोह और आन्दोलन के सन्दर्भ में जातिधर्म एवं उपनिवेशवाद के बीच सम्बन्धों का उल्लेख करती है। 1933–36 के वर्षो में दलित आन्दोलन के महत्वपूर्ण और निर्णायक घटकों का विस्तार से वर्णन देती हैं। इसके अलाव वह डॉ0 अम्बेडकर एवं गाँधी द्वारा साझा किये गये दिलचस्प विचारों एवं सम्बन्धों का भी वर्णन करती हैं।

रेवती वल्लभ त्रिपाठी की पुस्तक **'दलित ए सब ह्यूमन सोसाइटी'** आशीष पब्लिकेशन हाउस, नयी दिल्ली (1996) द्वारा प्रकाशित दलितों और उनकी समकालीन स्थिति पर मूल्यवान एवं आधिकारिक पुस्तक है। इस पुस्तक के लेखन ने भारत में दलितों की स्थितियो का वर्णन किया गया है। लेखक ने हिन्दू, मुस्लिम ब्रिटिश काल एवं पुनर्जागरण स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं उसके पश्चात् आन्दोलन में दलितों के इतिहास का पता लगाया इसके अलावा यह पुस्तक भारत में दलितों की कानूनी और संवैधानिक सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति की गम्भीरता से पड़ताल करती है।[15]

क्षीरसागर की पुस्तक **'दलित आन्दोलन इन इण्डिया एंड इट्स लीडर्स'** आर. के.एम.डी. प्रकाशन नयी दिल्ली 1994 – समकालीन दलित साहित्य में दिलचस्प कार्यों में से एक है। यह पुस्तक 1857 से 1956 की अवधि के दौरान भारत के दलित आन्दोलन और उसके नेतृत्व के इतिहास का पता लगाती है। यह पुस्तक अस्पृश्यता के इतिहास पर विस्तृत चर्चा करती है। जो कि अमानवीयकरण की एक क्रूर प्रक्रिया है। इसके अलावा यह वर्तमान भारत में दलित आन्दोलन के उद्भव के लिए जिम्मेदार कारकों पर बहुमूल्य जानकारी देती है। लेखक के अनुसार दलित आन्दोलन के उदय के कारणों में भूमि बन्दोबस्त, नये उद्योग संचार के साधन, नयी शिक्षा, प्रेस और प्रकाशन, एक नयी कानूनी प्रणाली और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को

[15] रेवती वल्लभ त्रिपाठी (1996) 'दलित ए सब ह्यूमन सोसाइटी', आशीष पब्लिकेशन हाउस, नयी दिल्ली।

स्थापित करना था। इसके अलावा दलित संगठनों की स्थापना घटनाओं का कालक्रम और दलित संगठनो की उपलब्धियों को इस पुस्तक में वर्णित किया गया है। अंत मे लेखक भारत के विभिन्न राज्यों में हुए दलित आन्दोलन की आलोचना करता है और भारत में दलित आन्दोलन की गतिशीलता की व्याख्या करता है।[16]

नन्दूराम की पुस्तक –**'बियॉन्ड अम्बेडकर–एसेज आन दलित्स इन इन्डिया'** (1995)– दलितों एवं उनके आन्दोलन को समर्पित महत्वपूर्ण और शानदार कार्यों में से एक है। इस पुस्तक मे लेखक, दलित आन्दोलन में डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर के योगदान को बताता और स्वीकार करता है। इसके अलावा लेखक भी गम्भीर रूप से जाँच करता है और हमें समकालीन दलित आन्दोलन और उसके नेतृत्व की तस्वीर प्रस्तुत करता है। वह समकालीन समाज में एक सामाजिक वास्तविकता के रूप में दलितों की स्थिति की व्याख्या करता है। बाद में समकालीन दलितों के बीच शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के स्तर की जाँच करता है। लेखक को लगता है कि दलितों की वर्तमान कठिन स्थिति सीमित शिक्षा के कारण है। इसलिए उन्हें लगता है कि इन जातियों एवं समुदायों के लोगों को बेहतर शिक्षा प्रदान करने से उनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति में सुधार होगा और इससे उनके बीच परिवर्तन की प्रक्रिया को तेज किया जा सकता है।[17]

जी० सी० अग्रवाल ने अपने अध्ययन में **'हाफवे टू इक्वालिटी'** मनोहर पाब्लिकेशन, नयी दिल्ली, 1983 में कहा है कि इस तथ्य से इन्कार नही किया जा सकता है कि राजनैतिक उत्थान से दलितों को अपेक्षाकृत रूप से मदद मिली है। अपने दावे के समर्थन में उन्होंने बाबू जगजीवन राम का उदाहरण दिया जिन्होंने कहा कि "हाँ सरकार में मेरे उच्च पदों पर रहने से हरिजनों के विकास मे मदद मिली। कई संस्थानों के लिए धन प्रदान करने में मेरा योगदान रहा। मैंने अपने कैरियर में अनेकों लोगों की मदद की है और मैंने संसद के माध्यम से अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित कई कानूनों को आगे बढ़ाने में योगदान दिया है। मैंने अपनी

[16] क्षीर सागर (1994), 'दलित आन्दोलन इन इंडिया एंड इट्स लीडर्स,' आर0 के0 एम0 डी0 पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

[17] नन्दूराम, (1995), 'बियॉन्ड अम्बेडकर–एसेज आन दलित्स इन इन्डिया'।

शक्ति का उपयोग दलितों को आगे बढ़ाने मे किया है। वे अब शोषण का विरोध करते हैं। यह आंशिक रुप से राजनीतिक भागीदारी के कारण है।" राजनीतिक हलकों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के बाद भी दलित नेताओं के खिलाफ उच्च जातियों के पूर्वाग्रह और रूढ़ियों को नही हटाया जा सका है। उन्होंने कहा कि इस तथ्य के कारण भी जगजीवन राम को मजबूर होकर कहना पड़ा कि "अस्पृश्यता हमारे लोगों के मन में गहराई तक व्याप्त है और इसे मैं बार–बार नोटिस करता हूँ।"[18]

जे० मुरुगकर द्वारा लिखित **'दलित और लोकतान्त्रिक क्रांन्ति'** डा0 अम्बेडकर और लोकतान्त्रिक भारत में दलित अफ्रिकन शीर्षक में अपने अध्ययन में विशेष रूप से दलित पैन्थर्स आन्दोलन का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। जो इस अवधि के दौरान महाराष्ट्र में उभरा और काफी प्रभावी हो गया। 1972–1979 के दौरान सामाजिक आन्दोलनों के समाजशास्त्र के ढांचे का उपयोग करते हुए, उन्होंने तर्क दिया कि दलित पैथर्स आन्दोलन कुछ नाराज एवं दुस्साहसी युवकों द्वारा प्रारंभ किया गया और यह आन्दोलन दलित साहित्य आन्दोलन के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। आन्दोलन के उद्भव के लिए जिम्मेदार कारकों का विश्लेषण इसकी संगठनात्मक स्थापना, नेतृत्व पैटर्न, इसकी विचारधारा और कार्यक्रम, और महाराष्ट्र में दलित समुदाय की बेहतरी में इसके योगदान का आकलन किया गया है लेखक के अनुसार दलित पैंथर्स आन्दोलन इस अवधि के दौरान दलितों कि बिगड़ती सामाजिक–राजनीतिक स्थिति के लिए एक सहज प्रतिक्रिया के रूप मे पैदा हुआ संगठन था।[19]

डॉ० विवेक कुमार द्वारा लिखित पुस्तक **'बहुजन समाज पार्टी एवं संरचनात्मक परिवर्तन'** इस पुस्तक में डॉ० विवेक कुमार ने दलित समाज के संरचनात्मक परिवर्तन को अत्यंत विस्तार से विश्लेषण किया है। इसमें बहुजन समाज पार्टी के उदय की विभिन्न परिस्थितियों को क्रमशः रेखांकित किया गया है। किस प्रकार दलित समाज में आत्मविश्वास पैदा हुआ एवं उत्साह के कारण दलित

[18] जी0 सी0 अग्रवाल, (1983), 'हाइवे टू इक्वलिटी', मनोहर पब्लिकेशन , नई दिल्ली।
[19] जे० मुरुगकर, (1991),दलित और लोकतान्त्रिक क्रांन्ति, पापुलर प्रकाशन।

समाज के युवा अपने भविष्य को बेहतर सामाजिक एवं आर्थिक जीवनयापन के लिए सक्रिय हुये। इस दौरान बी.एस.पी. ने दलित सशक्तिकरण के लिए विशेष **'पायलट प्रोजेक्ट'** तैयार किया जिससे ग्रामीण एरिया से लेकर शहरों तक दलित समाज में आत्मविश्वास का संचार हुआ। दलितों की आवाज को अब शासन एवं प्रशासन के द्वारा अनसुना नहीं किया जा सकता था। समाज के हाशिये पर रहने वाले दलित समाज की मानसिकता, कार्य पद्धति, उत्साह एवं संघर्ष ने समाज एवं शासन को भी प्रभावित किया। जिससे दलित समाज कूपमन्डूकता के घेरे से बाहर निकला और अपनी क्षमता एवं जज्बातों के अनुसार अपने सपनों की उड़ान भरने लगा।[20]

सुदर्शन राम बदन द्वारा लिखित **'आधुनिक दलित इतिहास के निर्माता'** पेंग्विन प्रकाशन, दलितों पर अधिकांश अकादमिक लेखन, विशेष रूप से पश्चिम में, दलित दावे को हिन्दू धर्म की अस्वीकृति एवं विद्रोह के रूप में दिखाने पर केन्द्रित है। यह मुख्य रूप से इसलिए है क्योंकि डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर को सभी प्रतीकों में सबसे महान हैं, ने हिन्दू धर्म को त्याग दिया और 1956 में अपने निधन से कुछ महीने पहले ही बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। विश्वास है कि हिन्दू धर्म मौलिक रूप से दलितों के लिए समानता न्याय और सम्मान के जीवन का विरोधी है। इस पुस्तक द्वारा इस हठधर्मिता को प्रभावी ढंग से अस्वीकृत किया गया है।[21]

जे०वी० पवार **'दलित पैंथर एक आधिकारिक इतिहास'** फारवर्ड प्रेस नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित–नामदेव ढसाल दलित पैंथर के संस्थापकों में से एक थे उन्होंने जे०वी० पवार के साथ मिलकर 9 जुलाई 1972 को दलित पैंथर संगठन की नींव डाली। दरअसल 1960 से 1970 का दशक दुनिया भर में जन आन्दोलनों का दशक था। अमेरिका द्वारा वियतनाम में हो रही बर्बस्ता के खिलाफ छात्रों और नौजवानों का संघर्ष चल रहा था साथ ही साथ वहाँ मानवाधिकारों की रक्षा तथा महिला अधिकारों के लिए भी आन्दोलन चल रहे थे। फ्रांस में 1967 में हुए छात्र आन्दोलन ने **'दगाल'** की सत्ता को हिला दिया था उसी समय अमेरिका में अश्वेत लोग रंग–भेद के खिलाफ आन्दोलन चला रहे थे। वर्ष 1966 में रंगभेद, नस्लभेद से

[20] कुमार विवेक, (2021), बहुजन समाज पार्टी एवं संरचनात्मक परिवर्तन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
[21] सुदर्शन राम बदन और गुरू प्रकाश पासवान (2021), आधुनिक दलित इतिहास के निर्माता, पोंविन प्रकाशन, नई दिल्ली।

लड़ने के लिए अमेरिका में ब्लैक पैंथर का जन्म हुआ। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत में दलित उत्पीड़न एवं शोषण को देखते हुए 1972 में महाराष्ट्र में दलित पैंथर आन्दालेन का भी जन्म हुआ। यद्यपि महाराष्ट्र डॉ0 अम्बेडकर के प्रभाव के कारण पहले से ही दलित आन्दोलनों का गढ़ रहा है और यही आर0 एस0 एस0 एवं शिवसेना जैसे संगठनों का भी गढ़ रहा है। यहीं कारण था कि महाराष्ट्र में प्रगतिशील एवं प्रतिक्रियावादी दोंनो आन्दोलनो का काफी असर था। जे०वी० पवार ने इस आन्दोलन को डॉ0 अम्बेडकर के बाद दलित आन्दोलन का स्वर्णकाल माना है।[22]

रामनारायण एस रावत और के० सत्यनारायण (संपा) की पुस्तक 'दलित अध्ययन, ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस–2016' भारत में हाल के दलित आन्दोलनों के आलोक में **'दलित अध्ययन'** का सही समय पर प्रकाशन जाति व्यवस्था पर नये सिरे से बहस को समृद्ध करता है। इस पुस्तक का मुख्य विषय दलित अध्ययनों के मौजूदा व्याख्यानों को चुनौती देने और सामाजिक और राजनैतिक मान्यता प्राप्त करने के लिए अपने अथक प्रयासों में दलित समुदाय के सामने आने वाली बाधाओं को उजागर करने के ईर्द गिर्द घूमता है। इस पुस्तक के माध्यम से लेखक–दलित सक्रियतावाद, भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा विशेषकर इसके बहिष्करणीय चरित्र की समस्याओं को सामने लाता है। अंत में जाति का संघर्ष सभी क्षेत्रों मे फैला हुआ है। क्योंकि उनके खिलाफ भेद–भाव सभी क्षेत्रों में देखा जाता है। इसलिए दलित आन्दोलन सामाजिक रूप से ही नहीं बल्कि राजनीति अर्थव्यवस्था और शिक्षा जगत में भी पहचान की माँग करता है।[23]

शोध के उद्देश्य –

वर्तमान अध्ययन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं–

1. दलितों को आन्दोलन की जरूरत क्यों पड़ी? दलित आन्दोलन की मूल अवधारणा क्या थी? इसका ऐतिहासिक विश्लेषण।

[22] पवार जे०वि० (2019), 'दलित पैंथर एक आधिकारिक इतिहास', फारवर्ड प्रेस, नई दिल्ली।
[23] रामनारायण एस रावत और के० सत्यनारायण, (2016), 'दलित अध्ययन', ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस।

2. दलित समुदाय पर अमानवीय अत्याचार क्यों किया जाता था? इसके नेपथ्य में किस प्रकार की सामाजिक मनोदशा कार्य करती है।
3. पुरातन सामन्ती सोच किस प्रकार उच्च शासक वर्गो पर हावी थी जो दलित उत्पीड़न एवं निरन्तर अमानवीय एवं गैर लोकतान्त्रिक क्रिया में लिप्त रहा करते थे। इसका विश्लेषण करना।
4. सम्पूर्ण भारत देश में एवं विशेषकर उत्तर प्रदेश में होने वाले दलित आन्दोलनों का प्रभाव एवं दलित वर्ग के जीवन में होने वाले परिवर्तनों की गवेषणा।
5. सामाजिक एवं राजनीतिक भागीदारी के माध्यम से दलितों को बढ़ावा देने और दलित मुक्ति के लिए राजनीति के मुख्यधारा में दलितों की समान एवं प्रभावी भागीदारी के लिए सुझाव व सिफारिशें प्रस्तुत करना।
6. बाबा साहब डा० भीमराव अम्बेडकर द्वारा रचित 'भारत के संविधान में प्रदत्त दलितों के अधिकारों तथा स्वतन्त्रता समानता एवं न्याय पर आधारित कानूनों को निरन्तर निष्कृय कर दलितों की अनदेखी की जाँच करना।
7. बहुसंख्यक हिन्दूओं के द्वारा दलितों पर किया जाने वाला उत्पीड़न एवं अमानवीय कृत्यों के कारण, विशेष कानूनों एवं संवैधानिक रक्षा कवच होने के बावजूद खिन्न होकर डॉ0 अम्बेडकर को हिन्दूधर्म छोड़कर बौद्ध धर्म क्यों अपना पड़ा।
8. अनवरत दलित आन्दोलन के वावजूद दलितों को राजनीतिक भागीदारी सामाजिक समरसता, एवं पर्याप्त प्रतिनिधित्व क्यों नहीं प्राप्त हो सका इसकी तथ्यपरक जाँच।
9. महात्मा गाँधी एवं डा0 अम्बेडकर के बीच कम्यूनल एवार्ड और पूना पैक्ट के विशेष प्रावधान के ऐतिहासिक संदर्भ की जाँच एवं आलोचनात्मक विश्लेषण।
10. अनु0 जाति/ जनजाति उत्पीड़न एक्ट 1989 एवं उ0प्र0 में बी0एस0पी0 की चार बार सरकार होने के पश्चात् दलित वर्ग के सामाजिक स्तर में व्यापक एवं सकारात्मक परिवर्तन का तर्कसंगत अध्ययन।

शोध अध्ययन की परिकल्पना–

उपरोक्त उद्देश्यों के आधार पर निम्नलिखित परिकल्पनाओं को उक्त अध्ययन के लिए निर्धारित किया गया है, वे निम्नलिखित है।

- दलितों के सामाजिक सुधारक एवं जागरुक करने हेतु विभिन्न समाज सुधारकों के सम्मुख विभिन्न चुनौतियां क्या थीं? क्यों उन्हें बार बार–सामन्तवादियों से जुझना पड़ता था?
- भारत में दलितों के सामाजिक एवं राजनैतिक मुक्ति में कौन–कौन सी प्रमुख बाधाएँ रहीं?
- दलित सशक्तिकरण हेतु कम्यूनल एवार्ड वरदान साबित होता परन्तु पूना पैक्ट के द्वारा दलितों के साथ विश्वासघात किया गया।
- दलित एवं पिछड़ा वर्ग आन्दोलन में सम्पूर्ण उत्तरी भारत एवं विशेषकर उत्तर प्रदेश में दलितों के राजनीतिक नेतृत्व को उभरने में कितना योगदान प्रदान किया?
- वास्तव में दलित आन्दोलन के पश्चात् उभरते सामाजिक एवं राजनैतिक नेतृत्व ने सफलतापूर्वक अपने समाज में जागरूकता पैदा की और उत्तरप्रदेश मे दलितों की एक जुटता को मजबूत किया।
- सम्पूर्ण भारत में और विशेषकर उ0 प्र0 मे दलितों का आन्दोलन एवं राजनैतिक नेतृत्व विशेषतः संगठनों में अनुशासन की कमी, दिशा विहिन नेतृत्व, अभिप्रेरणा की कमी, कुशल एवं दुरदर्शी नेतृत्व का अभाव एवं अपने समाज के प्रति प्रतिबद्धता की कमी जैसी अन्तर्निहित कमजोरियों से क्यों ग्रस्त है?
- दलित आन्दोलन का बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षण एवं धर्मान्तरण तथा दलित समाज में ईसाई एवं श्रमण संस्कृति का विस्तार क्यों?

अनुसंधान प्रविधि–

अध्ययन–प्रविधि के अन्तर्गत चुनी गई शोध पद्धति में प्राथमिक एवं द्वितियक दोनों प्रकार के आँकड़ों का प्रयोग–किया गया है। यह पद्धति ऐतिहासिक वर्णनात्मक आंशिक विवरणात्मक है और प्रकृति में विश्लेषणात्मक है। इसमें किये गये अनुभवजन्य सर्वेक्षण का उपयोग भी किया गया है। जिसमें उ० प्र० के दलित राजनेताओं एवं समाज सुधारकों को भी शामिल किया गया है। इसके अन्तर्गत द्वितीयक डेटा के रूप में ऐतिहासिक पाण्डुलिपी पुस्तकों, शोध पत्रों, शोध रिपोर्टों से एकत्र किया गया है तथा अध्ययन के विषय से सम्बन्धित आँकडों का विस्तृत सर्वेक्षण किया गया और दलित नेताओं से प्राप्त आँकड़ों को संरक्षित कर प्रश्नावली के माध्यम से साक्षात्कार किया गया है। जिसमें दलित सरकारों एवं सुधारों से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों से सम्बन्धित प्रश्न भी शामिल किया गया है।

अनुसंधान का महत्व–

इस अध्ययन के अन्तर्गत इन तथ्यों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है कि यद्यपि आजादी के 75 वर्ष के बाद भी जहाँ दलितों के सशक्तिकरण विकास, सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए विशेष कानून उपलब्ध हैं। देश में लोकतान्त्रिक संविधान लागू है, बावजूद इसके दलितों का महत्वपूर्ण रूप से आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से विकास क्यों नहीं हुआ क्या कारण है कि इन वर्गों में समकालीन परिवेश में भी आर्थिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक समानता नहीं आ सकी और आज भी अस्पृश्यता यदा कदा देखने को मिलती रहती है। देश की आजादी के पूर्व दलित आन्दोलन एवं दलित तथा पिछड़े समाज सुधारकों के अथक प्रयास एवं आजादी के पश्चात् बाबासाहेब डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विभिन्न प्रयासों के बावजूद अभी भी उत्तर प्रदेश के साथ–साथ सम्पूर्ण भारत देश में अस्पृश्यता, सा0 असमानता, जातीय भेद–भाव जैसी सामाजिक बुराई क्या यथावत है? दलितों के विशेष राजनैतिक अधिकार पूना पैक्ट द्वारा छिनने के पश्चात् इन वर्गो के लिए आरक्षण लागू किया गया। इसके पश्चात् दलित समाज को राजनैतिक प्रतिनिधित्व एवं सम्मान प्राप्त होने लगा।

जिसके कारण उत्तर प्रदेश एवं इस देश के दलित वर्ग विकास, साक्षरता, स्वास्थ्य, नौकरियों एवं राजनैतिक प्रतिनिधित्व में भागीदारी प्राप्त करने लगे।

इस अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है दलित आन्दोलन की प्रकृति एवं स्वरूप सामान्यतः सामाजिक एवं आर्थिक भागीदारी के साथ–साथ मानवीय गरिमा एवं सामाजिक न्याय प्राप्त करने का आन्दोलन रहा है। जिसमें भारतीय संविधान के आदर्श के अनुरूप सर्व समावेशी समाज की संकल्पना को मूर्त रूप दिया जा सके। भारत के विभिन्न क्षेत्रों से एवं विशेषकर उत्तर प्रदेश से प्रस्फुटित दलित आन्दोलन, दलित अस्मिता को पुनः स्थापित करने एवं भारत के सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में ढ़ाँचा गत परिवर्तन लाने के लिए किया जाने वाला सामूहिक प्रयास रहा है।

इस अध्ययन में पाया गया है कि भारतीय समाज एवं संस्कृति में दलित वर्ग की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक मामलों में स्थिति अत्याधिक कमजोर और दोयम दर्जे की रही है। धर्म को आधार बनाकर उन पर तरह–तरह की निर्योग्यताएं आरोपित की गई। वर्ण व्यवस्था मे तथाकथित शूद्र तथा अतिशुद्र समझे जाने वाले लोगों को उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों के अनुसार विभिन्न जातियों एवं उपजातियों में बांट दिया गया। यहीं से उनके शोषण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। जाति व्यवस्था का विकृततम् स्वरूप यह रहा है कि कथित निम्न जातियों में जन्म लेने वाला व्यक्ति कितना भी विद्वान् क्यों न हो वह ब्राह्मण का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकता, एवं निम्न जाति में जन्म लेने वाला पराक्रमी–से–पराक्रमी व्यक्ति स्वयं को क्षत्रिय नहीं कहला सकता था। बुद्धिबल, धनबल एवं बाहुबल के आधार पर क्रमशः ब्राह्मणों, धनोपार्जकों तथा क्षत्रियों द्वारा कथित निम्न जातियों का शोषण और उत्पीड़न किया गया। समय ने पलटी मारी जिसमें शिक्षा और ज्ञान के प्रसार से दलितों की स्थितियों में बदलाव आया। य़द्यपि पाश्चात्य देशों में लोकतात्रिंक शक्तियों के उदय के साथ ही वैयक्तिक स्वतंत्रता और समानता की लहर चली जिसने अन्ततः भारत के सामाजिक–राजनीतिक आर्थिक चिन्तन को प्रभावित किया। स्वाधीनता संग्राम आन्दोलन के दौरान महात्मा गांधी, डा0बी0आर0 अम्बेडकर, महात्मा ज्योतिबाफुले, शाहूजी महाराज, स्वामी अछूतानंद हरिहर आदि के प्रयासों से अंततः समाज के वंचित एवं दलितों को

भारतीय संविधान में न केवल बराबरी का दर्जा हासिल हुआ, वरन उनके विरूद्ध किये जाने वाले सभी प्रकार के भेद–भावों को भी संवैधानिक एवं कानूनी रूप से समाप्त कर दिये गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दलितों को संवैधानिक रूप से बराबरी का दर्जा दिये जाने तथा जहां कहीं आवश्यकता थी, वहां उन्हे आरक्षण व्यवस्था के द्वारा विशेष प्रकार का संरक्षण दिये जाने की व्यवस्था की गई। दलितों को निर्णयन प्रक्रिया में शामिल करने के लिए संसद तथा राज्य विधान सभाओं में कुल जनसंख्या में उनके आनुपातिक हिस्से के अनुरूप अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित कर दिये गए। सरकारी नौकरियों में इन दोनों वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गयी। दलितों को शैक्षिक दृष्टि से ऊंचा उठाने के लिए शिक्षण संस्थाओं में स्थान आरक्षित कर दिये गये। दलितोत्थान की दिशा में संविधान का 73वां तथा 74वां संशोधन "मील का एक पत्थर" सिद्ध हुआ है। इनके द्वारा पंचायती राज संस्थाओं तथा स्थानीय नगर निकायों को न केवल संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ, वरन् प्रत्येक स्तर पर एक–तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिये गये। इससे दलित महिलाओं को राजनीति में आगे आने तथा निर्णयन प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी निभाने के अवसर प्राप्त हुए।

दलितों के उत्थान और विकास हेतु चलाए गए अनेक कार्यक्रमो की बदौलत उनकी सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक स्थिति में बदलाव तो आया है, लेकिन वे अभी–भी अनेक मामलों में गैर–दलितों से काफी पीछे हैं। डॉ बी0आर0 अम्बेडकर, मान्यवर श्री काशीराम जैसों के प्रयासों से दलितों ने अपनी एक पृथक पहचान स्थापित कर ली हैं। उन्हें इस बात का एहसास हो गया है कि यदि वे संगठित रहते है तो सत्ता के शिखर तक पहुंचने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता। आज के दलित किसी का वोट बैंक न होकर अपने स्वयं का वोट बैंक हैं। उत्तर भारत में वे इस सीमा तक सशक्त हैं कि जिसे चाहें उसे जिता कर संसद या लोक सभा में पहुंचा सकते हैं। राजनीतिक मोर्चे पद दलितों के सशक्तिकरण में भारत के निर्वाचन आयोग के योगदान एवं भूमिका को कमतर आंकना एक भूल होगी। इसी संवैधानिक संस्था के प्रयासों से भारत के करोड़ो दलितों को वास्तविक रूप से अपने

विवेकानुसार मतदान करने का अवसर प्राप्त हुआ। अन्यथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के चार दशकों तक गांव के दबंग लोग दलितों को मतदान ही नहीं करने देते थे।

दलित बस्तियों मे बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता–

दलितों के साथ भेदभाव किए जाने का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू विद्युत, सड़कें, बैंकिंग सुविधाएं, पक्के मकान, स्वच्छ जलपूर्ति, स्वच्छ शौचालय, पानी की निकासी, दूरभाष जैसी बुनियादी सुविधाओं के मामले में शेष जनसंख्या के सापेक्ष अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के बीच पाए जाने वाले बृहत अंतराल से संबंधित है। योजना आयोग के एक आकलन के अनुसार सन् 2000 में ग्रामीण क्षेत्रों के दो–तिहाई से अधिक अनुसूचित जाति परिवार या तो भूमिहीन थे, या भूमिहीनों जैसेही थे, जबकि गैर–दलित परिवारों में भूमिहीन परिवारों का अनुपात एक–तिहाई ही था। जहां तक अनुसूचित जनजातियों को प्रश्न है तो उनमें से अधिकांश भूमिहीन बनवासी विविर्तित खेतिहर (Shifing Cultivators,) सीमान्त कृषक, चरवाहे तथा घुमन्तु पशुपालक हैं। अनुसूचित जातियों के एक–तिहाई से भी कम तथा अनुसूचित जनजातियों के मात्र 10 प्रतिशत परिवारों एवं गैर–दलितों में 60 प्रतिशत से अधिक परिवारों के पास स्वयं की पूंजीगत शाख है। जबकि 60 प्रतिशत से अधिक दलित परिवार आज भी मजदूरी करने वाले श्रमिकों की श्रेणी में हैं, जबकि गैर दलितों के मामले में यह अनुपात मात्र 25 प्रतिशत ही है। दलितों मे रोजगार की दर तथा प्राप्त मजदूरी भी काफी कम रही है। इसी प्रकार की विषमताएं दलितों के स्वास्थ्य स्तर मे भी देखने को मिलती हैं, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के ड्राफ्ट प्लान के अनुसार, दलित महिलाओं में रक्ताल्पता तथा मातृत्व मृत्युदर गैर–दलित महिलाओं की तुलना में काफी ऊंची है। अनेक अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवास जैसी सामाजिक सेवाओं तक पहुंच और राजनीतिक सहभागिता जैसे गैर–बराबरी व्यवहारों सहित अनेक प्रकार के बाजारी लेन–देन के मामलों मे दलितों के साथ आज भी बड़े पैमाने पर भेदभाव किया जाता है।

प्राचीन काल में शूद्रों अथवा दलितों पर हो रहे शोषण के खिलाफ कई महापुरूष खड़े हुये, जिनमें प्रमुख रूप से गौतम बुद्ध, महावीर जैन व मक्खाली

गौशाल है। जिन्होनें मानवता का संदेश देकर दलितों को बराबरी का हक दिलाने का प्रयास किया। मध्य काल में कबीर, रविदास जैसे महापुरूषों ने मनुवाद पर कटाक्ष के रूप में प्रबल प्रहार किया। आधुनिक काल में महात्मा ज्योतिबा फुले, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, पेरियार रामास्वामी, मा0 कांशीराम ने मानों सारे हथियार दलित समाज को लड़ने के लिये दिये, क्योंकि महात्मा फुले ही वो व्यक्ति है जिन्होनें शिक्षा का महत्व समझाया और दलित समाज के लिए सर्वप्रथम शिक्षा के द्वारा खोले उन्होंने कहा कि–

विद्या बिन मति गई

मति बिन गति गई

गति बिन नीति गई

नीति बिन शुद्र ध्वस्त हुए

इतना सारा अनर्थ एक अविद्या के कारण हुआ।

इस प्रकार वे जीवनभर दलितों को शिक्षा महत्व बतलाते रहे। महात्मा फुले के विचारों का रसपान कर डॉ0 भीमराव अंबेडकर ने उच्च शिक्षा प्राप्त कर दलितों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक और धार्मिक रूप से हक दिलाने के लिए जीवन भर मनुवादी व्यवस्था से लड़ते रहे और भारतीय संविधान की रचना के दौरान कई अनुच्छेदों मे दलितों व शोषितों के लिये समानता के अधिकारों का प्रावधान किया। डॉ0 अंबेडकर ने शिक्षा का महत्व बताते हुए कहा कि "शिक्षा ही शेरनी का वह दूध है, जो पी लेता है। वह दहाड़ना शुरू कर देता है।" डॉ0 अंबेडकर ने हिन्दू धर्म की बुराईयों से पीड़ित होकर 1956 ई में बौद्ध धर्म अपनाया और अपने अनुयायीयों से कहा कि सम्मान से जीने के लिये तुम्हें भी बौद्ध धर्म अपना लेना चाहिए। जिसकी परिणिती मे अब दलित समाज लाखों की संख्या में हिन्दू धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म अपना रहा है। रामास्वामी पेरियार ने भी हिन्दू धर्म पर कड़ा प्रहार किया तथा उन्होंने बहुमूर्ति पूजा एवं ब्राहम्णवादी व्यवस्था को अपने आन्दोंलनों से झकझोर दिया और दलित समाज को सामाजिक आन्दोलन के माध्यम

से हिन्दू धर्म की बुराईयों से बाहर निकालने का कार्य किया। सन् 1970–80 के दशक में मा0 कांशीराम ने दलित समाज को जगाने के लिए बहुजन समाज का नारा दिया और दलित समाज के लिए 14 अप्रैल 1984 को बहुजन समाज पार्टी के रूप में राजनैतिक विकल्प दिया जिसके तहत उत्तर प्रदेश जैसे सूबे में बहुजन समाज पार्टी की चार बार सरकार बनी और आज वह राष्ट्रीय दल वर्ग के लिए एक राजनैतिक पार्टी ही नहीं बल्कि एक सामाजिक आंदोलन भी सिद्ध हुई क्योकि दलित समाज ने बहुजन समाज पार्टी के कैडर आधारित विचारों के कारण अपने इतिहास की जानकारी प्राप्त की, और उस इतिहास से प्रेरणा पाकर हिन्दूवादी कुरूतियों का परित्याग किया और ब्राहम्णवादी कुचक्रों से सावधान भी दलित समाज सावधान भी हुआ है। विभिन्न महापुरूषों के द्वारा चलाये गये आन्दोलनों के कारण एवं संवैधानिक प्रावधानों के कारण दलित वर्ग सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक रूप से काफी सशक्त हुआ है। भारतीय समाज में दलितो के प्रति सवर्ण समाज भले ही अप्रत्यक्ष रूप से घृणा रखते हों, छुआछूत रखते हो, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से वह अब दलितों से छुआछूत नहीं करता, अन्याय–अत्याचार जैसी घटनायें भी कहीं–कहीं ही नजर आती है, क्योकि दलितों के लिए बनाये गये कानून उसे सुरक्षा प्रदान करते हैं। आज दलित वर्ग द्वारा कई राजनैतिक पार्टियों पर स्वंभू अधिकार है। वे खुद अपनी राजनैतिक पार्टी बनाकर राजनीति कर रहे है। इस सबके अलावा स्वतंत्रता के बाद दलित वर्ग को सबसे ज्यादा उपलब्धि मिली है। क्योंकि देश की आजादी से पहले तक दलित साहित्य उपलब्ध नहीं होता था, जिसके कारण इस शोषित समाज को इतिहास एवं अन्य जानकारियां नगण्य रूप से मिलती थी। सामाजिक मूल्यांकन एवं घटना क्रमों से भी यह समाज अनभिज्ञ सा रहता था। दलित साहित्य प्रगतिशील एवं क्रांतिकारी साहित्य हैं, जो अंधविश्वास एवं ब्राहम्णवाद के खिलाफ खुली प्रतिक्रिया है तथा आन्दोलन का ही प्रतिरूप है। डॉ चन्द्रकुमार वरठे के शब्दों में साहित्यों से पीड़ित समाज पर जो अन्याय और अत्याचार किये जाते रहे है उसका विरोध और दलित जीवन का चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य हैं। सारिका का संपादक रहे कमलेशवर के शब्दों में आज के दलित साहित्य का उन्मेष मात्र साहित्यिक घटना नहीं हैं, वह इतिहास का संपूर्ण वैज्ञानिक और विराट सामाजिक पुर्नमूल्यांकन करना चाहता हैं। दलित

साहित्य उन निर्पेक्षताओं, सौन्दर्यवादियों और निराशावादियों के लिये भी एक उत्तर है जो यह समझ बैठे है कि दलित आन्दोलन में दलित साहित्य की कोई सक्रिय भूमिका नहीं रह गई हैं। दलित समाज को मिले संवैधानिक अधिकारों एवं साहित्यिक उपलब्धता के कारण उसे अपने महापुरूषों के संघर्ष की जानकारी प्राप्त हुई है। तथा विरोधी विचारधारा को समझने का प्रयास हुआ है। और अपने वास्तविक इतिहास की जानकारी प्राप्त कर उससे प्रेरणा प्राप्त की हैं। जिसे समाज में विभिन्न प्रकार से हो रहे परिवर्तनों के माध्यमों से समझ सकते है। धार्मिक स्तर पर दलित समाज हिन्दू धर्म को त्याग कर बौद्ध धर्म अपनाया था, दलित समाज का धर्मान्तरण उसी घटना का परिणाम है, जिसके कारण सामाजिक स्तर पर आज दलित वर्ग सवर्णों के बराबर दिखाई देने लगा है। दलित अपने सम्मान की बात हर जगह करने लगा है दलित वर्ग हिन्दूवादी देवी–देवताओं को त्यागकर अपने महापुरूषों को सम्मान देने लगा हैं। शादी विवाह एवं अन्य कार्यक्रम बौद्ध रीतिरिवाज से करने लगे हैं। चाहे किसी चीज का निर्माण हो या व्यवहार हो, हर जगह बुद्ध और अंबेडकर के प्रतीक चिन्हों का प्रयोग किया जाने लगा हैं। इस प्रकार के परिवर्तनों के लिए दलित समाज मे किसी प्रकार का नेतृत्व भी नहीं दिखाई देता यह केवल मूल आंदोलन के रूप में संचालित हैं, जो कि बहुजन समाज पार्टी के उदय से शुरू हुआ है।

एक समय था जब इस देश में दलितों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक रूप से असमानता का सामना करना पड़ता था और देश के संचालन में उसकी कोई भागीदारी नहीं थी, लेकिन बाबा साहब डॉ0 अंबेडकर ने कम्यूनल अवार्ड द्वारा ब्रिटिश शासन से 1932 में दो मत का अधिकार (पृथक निर्वाचन) दलितों के लिये प्राप्त किया लेकिन महात्मा गांधी ने उसके विरूद्ध अनशन कर दिया, जिसके कारण पूना पैक्ट के अंतर्गत डॉ0 अंबेडकर को दलितों के लिए एक मत स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा। तभी से दलितों को मिले संवैधानिक अधिकार को देश के विभिन्न राष्ट्रीय राजनैतिक पार्टियां अपने स्वार्थ के लिये उपयोग करती आ रही हैं। राष्ट्रीय दल कांग्रेस की बात करें तो पता चलता है कि इस पार्टीयों ने देश में सबसे अधिक राज किया है और दलित वोट इसका मुख्य

आधार रहा है, लेकिन कांग्रेस के राज में दलितों को कोई विशेष भला नहीं हो सका हैं। दलितों को मिले आरक्षण के अनुसार कांग्रेस उन्हें सरकारी पदों पर नही बिठा सकी, उनके आरक्षण के कोटा का काफी हिस्सा खाली ही पड़ा रहा, अधिकतर दलित गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन व्यतीत करते रहे है। लेकिन दलित युवाओं के रोजगार के लिए उसने कोई प्रभावशाली योजना नहीं बनाई। सामाजिक अस्पृश्यता एवं कुरूतियों के लिए कांग्रेस के कार्यक्रम एवं नीतियां भी नाकाफी सिद्ध हुई हैं। राजनीति में दलितों को काग्रेंसी–सामंती मानसिकता के लोग अपना पिछलग्गू ही बनाते आ रहे है। और उनका राजनैतिक पद किसी प्रकोष्ठ तक ही सीमित रखा हैं। आरक्षित सीट से होने वाले चुनाव लड़ने वाले दलित उम्मीदवारों में से कांग्रेस ने ऐसे व्यक्ति को चुना जो कांग्रेस के समक्ष अपनी जुबान बंद करके रखे जिसके कारण दलितों के मुख्य मुददें कागजी ही साबित होते रहे, इस तरह कांग्रेस द्वारा केवल दलितों का मत प्राप्त किया जाता रहा है, जबकि उनके विकास के लिए किया कुछ नहीं। राष्ट्रीय राजनैतिक दल भारतीय जनता पार्टी की विचारधारा मुख्य रूप से हिंदुत्ववादी रही है, जो कि प्राचीन वर्ण व्यवस्था का अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन करती हैं।

वामपंथी दल जिनमे राष्ट्रीय स्तर पर कोई दलित नेता नही दिखाई देता, इन दलों मे भी उच्च स्तर पर सवर्ण व्यक्ति ही नजर आता हैं। इनकी विचारधारा तो वामपंथी है। लेकिन भारतीय सामाजिक गैर बराबरी की भावना इनके दिल मे भी दिखाई देती है। जिनका उदाहरण पश्चिम बंगाल, केरल, त्रिपुरा की सरकारों में देखा जा चुका है, दलितों के बेहतर जीवन के लिये इनके पास भी कोई निश्चित योजना नहीं है। बहुजन समाज पार्टी, की विचारधारा अन्य दलों की अपेक्षा भिन्न है, क्योंकि इस पार्टी को स्थापित करने वाले मा0कांशीराम दलित वर्ग से रहे है और उन्होंने डॉ0 अंबेडकर, महात्मा फुले की विचारधारा को अपनाया था जिसके कारण दलित समाज इस पार्टी को अपनत्व की भावना से देखती है वहीं बहुजन समाज पार्टी भी दलितों को अपने मूल आधार के रूप में समझती है। उत्तर प्रदेश में ब0स0पा की चार बार बनी सरकार मे दलितों के सम्मान एवं विकास के लिये कई योजनाये उनके महापुरूषों के नाम पर चलाई गई। ब0स0पा0 सरकार द्वारा

कई ऐतिहासिक स्मारक एवं पार्क दलित महापुरूषों के सम्मान में बनाये गये। देश व प्रदेश में सामाजिक भाईचारा का सिद्धांत मजबूत किया। कु0 मायावती के सशक्त नेतृत्व के कारण दलितों पर हो रहे अन्याय अत्याचारों में भारी गिरावट आई। ब0स0पा0 सरकार पार्टी के सामान्य दलित कार्यकर्ता को सरकार में उच्च पद पर आसीन की। इस तरह ब0स0पा0 दलितों के लिए अपनत्व की भावना से एक मात्र हितैषी पार्टी साबित हुई है।

समग्र शोध निष्कर्षों का मूल्यांकन करने के उपरान्त यह दृष्टिगोचर होता है कि दलित वर्ग प्राचीन इतिहास की तात्कालिक सामाजिक परिस्थितियों की उपज है। आर्य–अनार्य का भेद वर्ण–व्यवस्था से गुजरकर, समाज आज के दलित व सवर्ण का रूप धारित किये हुए है, जिसमें दलित वर्ग प्राचीन समय से ही शोषित व पीड़ित रहा है। इतिहास के किसी भी राजवंश के काल में दलितों की स्थिति पशुवत ही रही है। लेकिन दूसरी ओर दलित वर्ग को समय अंतराल पर मिले विकास के अवसरों का दलितों ने भरपूर उपयोग भी किया है और अपने आप को सि़द्ध भी किया है। इसी की परिणति है कि आज का दलित समाज, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, शैक्षणिक व आर्थिक रूप से सशक्त भी हुआ है, लेकिन भारत में दलित विरोधी मानसिकता दलितों को अपनी दमनकारी व स्वार्थी नीतियों के कुचक्र में फंसा कर रखना चाहती हैं। जिसके उदाहरण हमें समय–समय पर विभिन्न रूपों में देखने मे मिल जाते है। आज दलित समाज को सावधानी अथवा सतर्कता पूर्वक "दलित आन्दोलन" को आगे बढ़ाते हुए अपने भविष्य एवं समाज के निर्माण में निष्ठा पूर्वक आगे बढ़ने की आवश्यकता है।